मौजूदा दौर में शिक्षक होने के मायने

शिक्षक का मौलिक काम है जागरूकता और वैज्ञानिक सोच पैदा कर समाज को शिक्षित करना। उनका काम पहले भी यही था और आज भी यही है। लेकिन अब परिस्थितियां बदली हुई हैं। यह नवउदारवाद और बढ़ते फासीवाद का दौर है। शिक्षा पर चौतरफा हमला हो रहा है, जिसका प्रभाव केवल शिक्षाकर्मियों पर ही नहीं बल्कि छात्रों और अभिभावकों सहित पूरे समाज पर पड़ रहा है।

1986 की शिक्षा नीति के संशोधन (1992) ने शिक्षा क्षेत्र को उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (एलपीजी) की नीतियों के अनुसार बदल दिया था। शिक्षा में निजीकरण का रुझान उसके बाद तेज़ी से बढ़ा। लेकिन हमारे यहाँ जो वोटों के ज़रिए सत्ता में बने रहने की व्यवस्था है लोकतंत्र की, इसकी वजह से सरकारी स्कूलों को सिरे से नकारना या एकदम बंद करना न नब्बे के दशक में संभव था और न आज है। इसलिए इस प्रणाली की साख लगातार खराब की जा रही है। ऐसे हालात पैदा किए जा रहे हैं कि इन स्कूलों में पढ़ाई न हो।

पहला हथियार है शिक्षा पर होने वाले सरकारी खर्च में कटौती करना और निजी क्षेत्र के विस्तार के लिए जगह तैयार करना। सन् 1986 से पहले दो तरह के स्कूल थे – सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त। तब बदली गई शिक्षा नीति में बिना सहायता प्राप्त निजी स्कूल खोलने का प्रावधान किया गया। अब सहायता प्राप्त स्कूल का पुराना स्टॉफ सरकार ने ले लिया है और स्कूल पूरी तरह निजी हो गया है। बहुत से नए निजी स्कूल बन रहे हैं। सन् 1986 तक लगभग 93% छात्र सरकारी स्कूलों में पढ़ते थे, अब यह संख्या 43.75% रह गई है। सरकारी सहायता प्राप्त कॉलेजों के स्टॉफ को भी समायोजित कर निजी बनाने की प्रक्रिया शुरू की जा रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) का बजट 60% कम कर दिया गया है। शिक्षा क्षेत्र का कुल बजट भी घटा है। कोठारी आयोग की सिफारिश के अनुसार शिक्षा क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद का 6% खर्च होना चाहिए, लेकिन यह खर्च हमेशा कम रहा है और पिछले दस सालों में 0.3% पर आ गिरा है। और अब तय किए गए बजट को भी पूरा न खर्च करने की प्रवृत्ति शुरू हो चुकी है।

common goods?
JORNADA INTERNACIONAL DE LUTA 2020 ANTI-IMPERIALISTA
tricontinental
Instituto Tricontinental de Pesquisa Social

जोर्ज गॉन्ज़ालेस मोरालेस (मेक्सिको): □□□□□□□□□□ □□□□□□□

शिक्षकों को गैर–शैक्षिक कामों में उलझा कर रखना एक और तरीका है। अध्यापक संघ में रहते हुए हमने एक सर्वे में पाया था कि एक विशेष साल में हरियाणा के सरकारी स्कूलों में लगभग 220 दिनों में से शिक्षकों को 134 दिन गैर–शैक्षिक कामों में लगाया गया। यहाँ तक कि शिक्षकों की इन–सर्विस ट्रेनिंग छुट्टियों में रखने की बजाए बच्चों की पढ़ाई के अहम महीनों (जैसे, दिसम्बर) में रखी जाती है। इसके विपरीत उपरोक्त संदर्भ दिए बिना यह आम प्रचार किया जाता है कि सरकारी स्कूलों में शिक्षक पढ़ाना नहीं चाहते, या उनमें अनुपस्थिति की प्रवृति ज़्यादा है। यही कारण है कि अभिभावकों में और आम समाज में शिक्षकों की माँगों के प्रति उदासीनता है।

अध्यापकों की नियुक्तियाँ ही न करना, या अध्यापकों को कॉन्ट्रैक्ट पर या अतिथि के रूप में नियुक्त करने की प्रक्रिया भी एक हथियार है। हरियाणा के स्कूलों में कॉन्ट्रैक्ट, अथिति और पक्के शिक्षक मिलाकर भी 40,000 से ज़्यादा पद खाली हैं। यदि शिक्षा का अधिकार अधिनियम और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षण अभियान के तहत तय वर्क लोड के हिसाब से पद सैंक्शन हों, तो कम से कम 75,000 शिक्षकों की कमी है। रिक्त पद भरने की बजाए सरकार ने शिक्षक पुन: नियोजन का रास्ता अपनाया। हरियाणा में उच्च शिक्षा में 50% से ज़्यादा पोस्ट खाली पड़े हैं और जो शिक्षक हैं उनमें से एक तिहाई कॉन्ट्रैक्ट पर हैं। शिक्षकों की कमी के चलते, सेवारत शिक्षकों पर शैक्षिक एवं गैर–शैक्षिक कामों का वर्क–लोड बढ़ता है। इसके बावजूद हरियाणा सरकार ने शिक्षकों की भर्ती को कौशल रोज़गार निगम में हस्तांतरित कर दिया है। तो अब पक्की भर्तियाँ और भी कम होंगी। यानी शिक्षकों के बड़े हिस्से के लिए काम की परिस्थियाँ लगातार बद से बदतर और अस्थाई हो रही हैं, और काम का बोझ बढ़ता जा रहा है।

इस तरह शिक्षा में निजीकरण को बढ़ावा देने के लिए पिछले तीन दशक से सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को भीतर से खोखला किया जा रहा है। इसके साथ ही यह प्रचार होता रहा है कि निजी स्कूलों में अधिक गुणवत्ता है। इसमें एक कदम आगे बढ़कर अप्रत्यक्ष रूप से अभिभावकों को निजी स्कूलों में बच्चों का दाख़िला करवाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, हरियाणा में निजी स्कूलों से सम्बन्धित अधिनियम में 134ए के तहत और अब चिराग योजना के द्वारा गरीब परिवारों के लिए निजी स्कूलों में बच्चे भेजने का रास्ता बनाया जा रहा है, जबकि हरियाणा के मॉडल संस्कृति स्कूलों में फीस लेने का प्रावधान शुरू कर दिया गया है। यानी करदाताओं के पैसे से सरकारी स्कूलों में शिक्षक नियुक्त कर उन्हें बेहतर बनाने की बजाय उस पैसे को निजी संस्थाओं की मैनज्मेंट को दिया जाएगा।

असल मकसद पूंजी का संकेंद्रण है। यही कारण है कि कभी गुणवत्ता का केंद्र निजी स्कूलों को, तो कभी ‘आकाश’ जैसे कोचिंग सेंटरों को और आज डिजिटल/ऑनलाइन मंचों को बताया जा रहा है। पिछले लगभग दो दशकों से अभिभावक दोहरी फीसें भर रहे हैं। एलपीजी नीतियों के लागू होने के बाद से लगातार शक्तिशाली होता गया कॉर्पोरेट वर्ग, शिक्षा को ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफा कमाने के क्षेत्र में बदल रहा है। वह शिक्षा के प्रति समाज की आकांक्षा को बाजार में बदल कर अपने लिए मोटी कमाई बटोरना चाहता है। और सरकार इसमें उनका साथ दे रही है।

दूसरी तरफ़ दक्षिणपंथी राजनीति अपने प्रभुत्व को बरकरार रखने के लिए शिक्षा को ढाल की तरह इस्तेमाल कर रही है। चूंकि शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिसका समाज के मानसिक पटल पर लंबे समय तक असर रहता है, इसलिए आज हम शिक्षा पर तमाम तरह के वैचारिक हमले भी देख रहे हैं; जैसे,

विज्ञान एवं तर्क सम्मत शोध–कार्यों के लिए संसाधनों में कटौती करना लेकिन मनचाही परियोजनाओं के लिए अपार संसाधन मुहैया करना, कॉर्पोरेट मीडिया के ज़रिए शिक्षण संस्थानों को बदनाम करना, सवाल पूछने वाले शिक्षकों, छात्रों, शोधार्थियों को झूठे मुकद्दमों में उलझा कर रखना, सत्ता के प्रयोग से अपनी मन मर्जी का प्रबंधन बिठा कर शिक्षा व्यवस्था में ढाँचागत बदलाव करना आदि।

कॉर्पोरेट और दक्षिणपंथ के **गठजोड़** के दौर में ये चौतरफा हमले प्रचंड रूप ले चुके हैं। यही कारण है कि व्यापक विरोध के बावजूद शिक्षा का बाजारीकरण और केसरिया–करण करने वाली नई शिक्षा नीति न केवल पारित हुई बल्कि उसकी संगति में सरकार रोज नए नियम लागू कर रही है। आज बाल शिक्षा से लेकर स्कूल और उच्च स्तर के शिक्षाकर्मी अपनी स्थिति पर खतरा महसूस कर रहे हैं; और इसकी वजह से कहीं वे मायूसी में मिलते हैं और कहीं संघर्ष करते।

लेकिन आज शिक्षकों का संघर्ष ठोस परिस्थितियों के ठोस विश्लेषण के बिना नहीं लड़ा जा सकेगा। इसलिए ज़रूरी होगा कि शिक्षक वर्तमान दौर की आर्थिक नीतियों और राजनीति के संदर्भ में शासक वर्ग के हितों और जनता के हितों के बीच अन्तर्विरोध को समझें। इसके कई बिंदु हैं:

1. शिक्षा में बढ़ते निजीकरण के साथ शिक्षा क्षेत्र में रोजगार घटेंगे तथा रोजगार की शर्तें बदलेंगी। साथ ही निजी क्षेत्र की महंगी शिक्षा देश–प्रदेश की बड़ी आबादी की पहुंच से बाहर हो जाएगी। इसलिए सार्वजनिक शिक्षा को बचाने, बढ़ाने और इसकी उच्च गुणवत्ता का मुद्दा शिक्षकों समेत जनता के बड़े हिस्से के भविष्य से जुड़ा हुआ है।

2. शिक्षा में निजीकरण का विरोध करने से यह अभिप्राय नहीं है कि निजी संस्थानों में कार्यरत शिक्षाकर्मियों के उत्पीड़न को नजरंदाज किया जाए। बल्कि उनकी परिस्थितियों का जायज़ा लेते हुए उनके मुद्दों को संघर्ष का हिस्सा बनाने की कोशिशों से शिक्षक आंदोलन मजबूत होगा। इसीलिए, उदाहरण के तौर पर, हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ के मांग–पत्र में यह मांग भी जोड़ी गई है कि निजी स्कूलों के लेन–देन के लिए एक नियमावली बने और उनके स्टाफ को सरकारी नियमों के तहत भुगतान किया जाए।

विट्नी रिचर्ड्ज़ कलथेस (जमैका): किश्ती अनेक, क्षति एक

3. शिक्षकों को यह भी समझना होगा कि सेवा शर्तों में भिन्नता और जाति आदि के आधार पर शिक्षकों के अलग–अलग दल बनाने से उनकी एकजुटता प्रभावित होती है। बल्कि विभिन्न स्तर के शिक्षक संगठनों, अलग अलग राज्यों के शिक्षक संगठनों, और सेवा शर्तों के अनुसार बने सभी शिक्षक संगठनों को सार्वजनिक शिक्षा को बचाने का सांझा संघर्ष एक साथ लड़ना पड़ेगा, और एक दूसरे की विशिष्ट माँगों का समर्थन भी करना चाहिए। इसकी कई कोशिशें हो भी रही हैं। जैसे देश के स्तर पर 'सार्वजनिक शिक्षा बचाओ' के मुद्दे पर पच्चीस राज्यों से गुजरते हुए जनशिक्षा जत्था निकाला गया। इसके बाद मार्च 2023 में दिल्ली एजूकेशन असेंबली आयोजित की गई। इस असेंबली में स्वीकृत मांगपत्र पर राज्य में सितंबर 2023 को 'शिक्षा बचाओ, देश बचाओ' असेंबली की गई। यह अभियान आम जनता को जागरूक करते हुए शिक्षा सम्बन्धी स्थानीय मांगों पर लामबंद करने का प्रयास कर रहा है और सकारात्मक ढंग से हस्तक्षेप करते हुए अध्यापकों को कर्तव्यपरायणता के लिए उत्प्रेरित कर रहा है।

4. यह सच्चाई है कि (विशेषकर स्कूल स्तर पर) लोगों को गुणवत्ता के मामले में निजी शिक्षण संस्थान सरकारी से बेहतर लगते हैं। यहाँ तक कि अधिकतर शिक्षक और सरकारी कर्मचारी भी अपने बच्चों को निजी स्कूलों में भेज रहे हैं। इस सच्चाई को समझे बिना और इसे तार्किक ढंग से जनता के बीच में रखे बिना हम जनसमर्थन नहीं जुटा सकते। फिर सभी निजी शिक्षण संस्थान एक जैसे नहीं हैं। उनमें कई तरह की असमनताएँ हैं। कौन किस तरह के निजी संस्थान में पढ़ता है यह परिवारों की खर्च करने की क्षमता पर निर्भर करता है। इस तरह निजी क्षेत्र समाज में पहले से मौजूद असमानताओं को और पक्का कर रहा है। दूसरा 'निजी स्कूलों में नाम लिखवाओ और पढ़ने कोचिंग सेंटर में भेजो' का प्रचलन दर्शाता है कि निजी क्षेत्र में स्वभावत: गुणवत्ता होने के दावे में पेच है। यह बात शिक्षाकर्मियों को खुद भी समझनी है तथा लोगों को भी समझानी है।

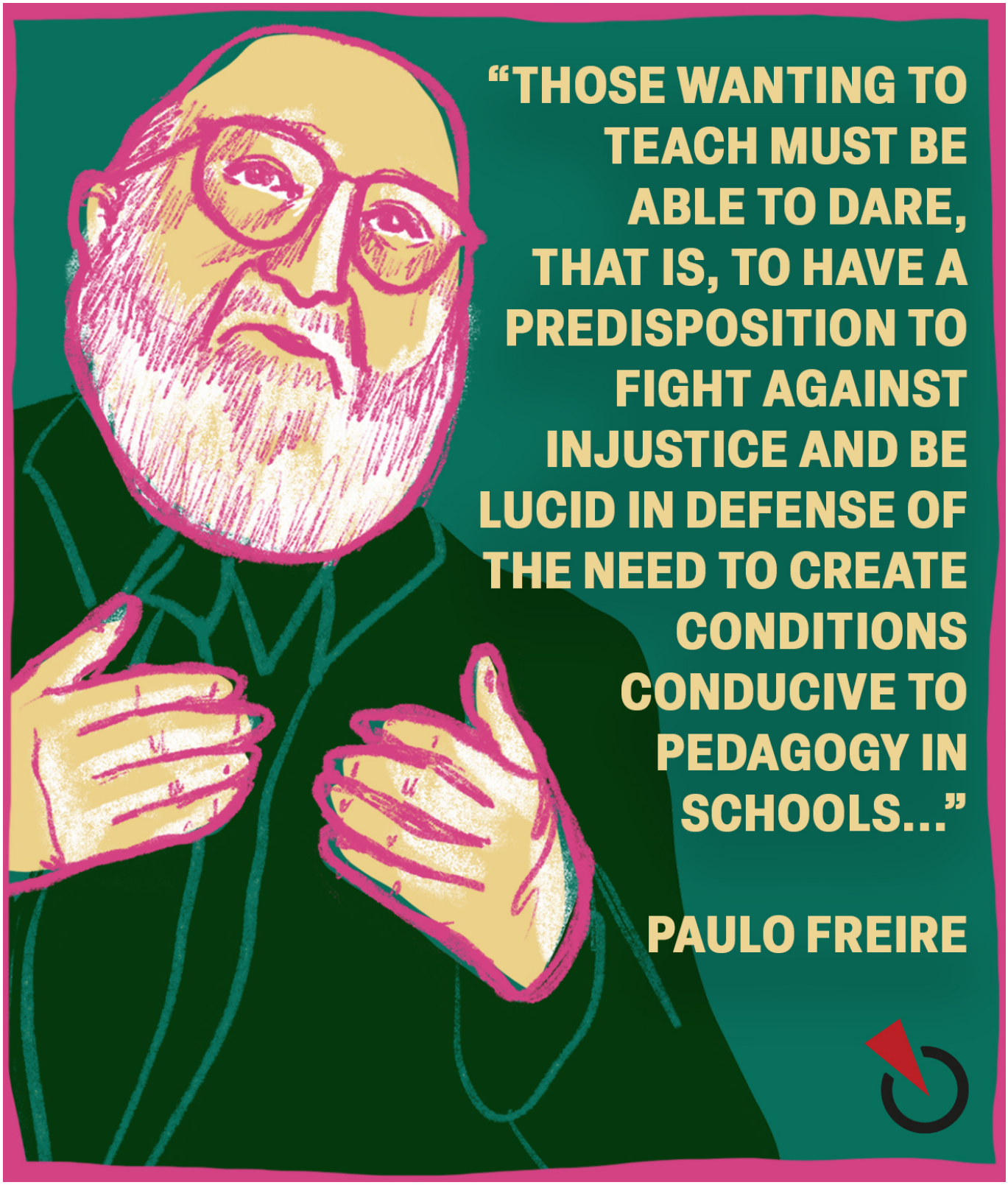

ट्राईकॉन्टिनेंटल टीम

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य के साथ शिक्षक अपने कार्यस्थल पर समर्पण भाव से काम करें और साथ ही अपने क्षेत्र के लोगों को आवश्यक जानकारियां देते हुए सार्वजनिक शिक्षा के पक्ष में जनता को संगठित

करते हुए संघर्ष करें, क्योंकि अच्छी सार्वजनिक शिक्षा सामाजिक न्याय का सवाल है। और इस मुद्दे को हर घर का मुद्दा बनाने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी आज के शिक्षकों के कंधे पर है।

(हरियाणा विद्यालय अध्यापक संघ के पूर्व प्रधान एवं महासचिव, **सत्यपाल सिवाच**, के साक्षात्कार पर आधारित लेख)